जैन संस्कृति में अहिंसा की भावना

डॉ0 कुमारी शिल्पा*

मनुष्य अपने सुख–शान्ति के लिए अहर्निश, उद्यमशील एवं प्रयत्नशील रहता है, फिर भी जबतक वह दूसरों की सुख–सुविधाओं पर ध्यान नहीं देगा, वह केवल अपने आप में स्वार्थी, आरामतलबी, अहंकारी और अर्थतोषी बनकर दूसरों की आवश्यकताओं की उपेक्षा करता रहेगा, दूसरे के अधिकारों को छीनता रहेगा, दूसरे के श्रम का शोषण करता रहेगा तबतक वह स्वयं जीवन में सुख–शान्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा। अतः किसी भी व्यक्ति को सच्चे अर्थों में सुख–शान्ति सम्पन्न बनना है तो उसे मन–वचन–कर्मणा अहिंसा को स्वीकार करना होगा, क्योंकि इसके बिना शाश्वत–सुख एवं शांति की कल्पना नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि संसार में मूर्धन्य मनीषियों ने सुख–शान्तिपूर्वक जीवन–यापन करने के लिए अहिंसा की खोज की थी जिसके अनुसार उनलोगों ने अपना जीवन जियो और जनमानस को भी अहिंसामय जीवन जीने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप जनमानस ने भी अहिंसा धर्म को स्वीकार कर समाज में अमन–चमन स्थापित किया जिससे यह कहा जा सकता है कि अहिंसा मानव–जाति के ऊर्ध्वमुखी विराट् चिंतन का सर्वोत्तम विकास विन्दु है। यह लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के मंगलमय जीवन का मूलाधार है, जिससे मानव सभ्यता के उच्च आदर्शों का सही–सही मूल्यांकन किया जा सकता है। परन्तु, इसके लिए अहिंसा को निर्मल आँख होना नितांत आवश्यक है। यदि अहिंसा न हो, तो मनुष्य न स्वयं अपने को पहचान न सकेगा और न दूसरों को ही जान पायेगा। अतः पशुत्व से ऊपर उठने के लिए अहिंसा का आलम्बन लेना आवश्यक है।

अहिंसा का स्वरूप इतना विराट् है कि संसार के समस्त धर्म, दर्शन एवं संस्कृति इसी में समावेश हो जाते हैं। यही कारण है कि प्रायः सभी धर्मों ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया और अन्ततोगत्वा इसी का आश्रय भी लिया है, भले ही इसकी सीमाएँ कुछ भिन्न–भिन्न हों, फिर भी अहिंसा सभी धर्मों में सर्वमान्य एवं सामदृत है, परन्तु श्रमण संस्कृति या धर्मों में जितना अहिंसा भावना की उपयोगिता एवं महत्ता पर बल दिया गया है उतना अन्य किसी भी धर्म–संस्कृति में नहीं है। यही कारण है कि श्रमण धर्म–संस्कृति में अहिंसा–भावना का सारगर्भित सूक्ष्मातिसूक्ष्म

***एम0 ए0 (प्राकृत एवं जनैशास्त्र), पी–एच0 डी0, प्राकृत–जैन शास्त्र और शोध–संस्थान वैशाली, बिहार**

विश्लेषण किया गया है। यहाँ पर श्रमण धर्म–संस्कृति का अभिप्राय जैन–बौद्ध संस्कृति से है। वस्तुतः श्रमण धर्म–संस्कृति जैन–बौद्ध की समन्वयक धर्म–संस्कृति है, जो सर्वांग रूप से अहिंसा–भावना से ओत–प्रोत है।

प्रस्तुत शोध–पूर्ण आलेख में जैन धर्म–संस्कृति में अहिंसा की जो उपयोगिता एवं महत्ता है, उसका सारगर्भित विवेचन करना मेरा अभीष्ट है, क्योंकि आज के परिप्रेक्ष्य में यह विषय समसामयिक एवं अत्यंत प्रासंगिक है। तद्नुसार इसकी व्याख्या निम्न प्रकार प्रस्तुत की गयी है ––

जैन–संस्कृति में अहिंसा–भावना :

जैन–धर्म श्रवण–संस्कृति का धर्म है, जिसके प्रवर्तक आदि (प्रथम) तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। अहिंसा–भावना से ओत–प्रोत ऋषभदेव ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए जो परमोपदेश दिया, वह जैन धर्म के नाम से विश्व–विख्यात है। जैन धर्म का समस्त सिद्धान्त अहिंसा–भावनामय है। यही कारण है कि इस ध र्म–संस्कृति में अहिंसा–भावना का जितना सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया गया है, उतना अन्यत्र किसी भी धर्म में नहीं, क्योंकि 'अहिंसा–भावना' जैन धर्म का महाप्राण है। ऐसा कहे तो काई अतिशयोक्ति न होगी कि जैन–संस्कृति की अहिंसा विश्व–संस्कृति की महान देन है। अतः श्रमण संस्कृति में अहिंसा जीवन और धर्म की सबसे पहली कसौटी है यानी अहिंसा के केन्द्र से ही श्रमण–संस्कृति का प्रथम चरण बढ़ता है। अर्थात् जैनधर्म की उत्पत्ति का पहला सिद्धान्त अहिंसा–भावना है। यह जैन दर्शन की हृदयस्थली है, जिसके बिना जैन दर्शन प्राणविहीन है। इसकी विशद् विज्ञप्ति में कहा गया है1 –– 'अहिंसा–गहणे पंच महवयाणि गहियाणि भवंति'2 अर्थात् एकमात्र अहिंसा ग्रहण कर लेने से सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह–समस्त व्रत स्वयमेत ग्रहण हो जाते हैं।

जैन ग्रंथ 'दशवैकालिकचूर्णि' में अहिंसा भावना पर प्रकाश डालते हुए बतलाया गया है ––

संजमो पुण तीसे चेव अहिंसाए उवग्गहे वट्टई।
संपुण्णाय अहिंसाय संजमो वि तस्स वट्टइ।।

अर्थात् जहाँ संयम है, वही अहिंसा है और जहाँ सम्पूर्ण अहिंसा है, वही संयम का निवास है। इस प्रकार श्रमण संस्कृति का मूल स्वरूप अहिंसा है और सत्य आदि उसका विस्तार है। ब्रह्मचर्य उसकी साधना है, अस्तेय और अपरिग्रह उसका तप है।

'सर्वार्थसिद्धि' में अहिंसा के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'अहिंसा सभी व्रतों का मूल है, क्योंकि आत्मिक उत्थान के निर्माण के लिए किये जानेवाले व्रत विध ान में प्रथम अहिंसा का है। जिस प्रकार धान्य खेत की सुरक्षा के लिए चारों ओर

से कांटा का घेरा लगाया जाता है उसी प्रकार अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए चारों ओर से सत्यादि सभी व्रत वाड़े के रूप में लगाये जाते हैं।'3 यद्यपि सभी व्रत महान् एवं उपादेय है, किन्तु सबकी जड़ में अहिंसा–भावना ही दृष्टिगत होती है।

जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'भगवती आराधना' में अहिंसा–भावना पर प्रकाश डालते हुए बतलाया गया है कि 'जिस प्रकार इस जगत् में अणु से छोटी दूसरी वस्तु नहीं है और आकाश से भी बड़ी कोई चीज नहीं है उसी प्रकार अहिंसा–व्रत से बड़ा कोई दूसरा व्रत नहीं है। अतः अहिंसा सब आश्रमों का हृदय है, सर्वशास्त्रों का गर्भस्थल है और समस्त व्रतों का निचोड़ा हुआ सार है।'4

जैन दर्शन के प्रमुख आगम ग्रंथ 'आचारांगसूत्र' के अनुसार – 'सव्वे जीवावि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिई।'5 अर्थात् विश्व के समस्त प्राणी चाहे वे छोटे हों या बड़े, पशु हों या मानव, सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

जैन दर्शन के प्रमुख आगम ग्रंथ 'दशवैकालिकसूत्र' के अनुसार – 'सव्वे पाणा पिआउया सुहसाय दुहपडिकूला'6 अर्थात् सभी प्राणों को सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है। सबको अपना जीवन प्यारा है।

'वृहत्कल्पभाष्य' नामक ग्रंथ के अनुसार ––

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तियग्गं जिण सासणं यं।।7

अर्थात् जिस हिंसक व्यापार को तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते, उसे दूसरा भी पसन्द नहीं करता। जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते हैं, यही जिनशासन के कथन का सार है।

'दशवैकालिकसूत्र' ग्रन्थानुसार ––

'धम्मो मंगलमुक्किटट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।'8

अर्थात् किसी भी प्राणी के प्राणों की हत्या करना धर्म नहीं है, अहिंसा, संयम और तप –– यही उत्कृष्ट मंगलमय धर्म है। आगे 'दशवैकालिकसूत्र' में कहा गया है––'इस लोक में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनकी हिंसा न जानकर करो और न अनजान में करो या न किसी दूसरे से भी किसी की हिंसा कराओ क्योंकि सबसे भीतर एक जैसी आत्मा है।'9

जैनागम 'उत्तराध्ययनसूत्र' के अनुसार ––

अज्झत्थं सव्वओ सव्वंदिस्स पाणे पियाउए।
न हणे पाणिणो पाणे भवेराओ उवरए।।10

अर्थात् हमारी तरह सबको अपने प्राण प्यारे हैं। ऐसा मानकर भय और वैर से मुक्त होकर किसी भी प्राणी की हिंसा न करो।

जैनागमों में प्रमुख आगम ग्रंथ 'सूत्रकृतांगसूत्र' के अनुसार ––

संयढतिवायाए पाणे, अदुवाढन्नेहिं पायए।
हणन्ते वाढणुजाणइ वरें बढ्ढईअप्पणोट्ठ।।11

अर्थात् जो व्यक्ति हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और दूसरों की हिंसा का अनुमोदन करता है, वह अपने लिए वैर बढ़ाता है। अतः प्राणियों के प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा की अपनी आत्मा के प्रति रखते हो।

जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'अहिंसा दर्शन' के अनुसार ––

दयानदी महातीरे, सर्वे धर्मास्तृणाड्कुराः।
तस्या शोषमुपेतायां, कियन्नन्दन्ति ते चिरम्।।12

जैसे–गंगा महानदी जब बहती है और उसकी विराट धाराएँ जब प्रवाहित होती हुई चलती है तो उसके किनारों पर घास खड़ी हो जाती है, हरियाली लहलहाने लगती है तथा अनेकानेक वृक्ष भी उग जाते हैं, जबकि नदी के पानी की धारा प्रत्यक्ष में उन्हें सींचती हुई नजर नहीं आती, किन्तु उसके जलकण अन्दर–ही–अन्दर सबको तरी पहुँचाते हैं, जिससे वृक्ष आदि हरे–भरे बने रहते हैं, ठीक उसी प्रकार दया की महानदी भी यदि हमारे अन्तःकरण में बनी रहेगी, वचन और काय में भी उसका संचार होता रहेगा, तो दूसरे सत्य आदि व्रत भी अपने आप उठेंगे।

'दशवैकालिकसूत्र' नामक ग्रंथानुसार ––

हत्थ संजाए, पाय संजय वाय संजए संजइंदिए।13

अर्थात् संयम के बिना अहिंसा असम्भव है। इसलिए तुम अपने हाथों को संयम में रखो, उन्हें अनुचित कार्य के लिए छूट मत दो। इन हाथों पर तुम्हारा पूरा नियंत्रण और पूरा अधिकार होना चाहिए। वाणी को संयम में रखो। इन्द्रियों को संयम में रखो। यदि उन्हें निरंकुश होने दिया, तो समझ लो कि जीवन नौका व्यसनों के प्रवाह में बहकर एक दिन विनाश के भंवर में जा गिरेगी और मानव जीवन का अनमोल महत्त्व धूल में मिल जायेगा। अतः साधक को मन–वचन–कार्यपूर्वक संकल्प से कृत, कारित और अनुमोदनपूर्वक अहिंसा व्रत का पालन करना चाहिए।

जैनधर्म एवं संस्कृति में 'अहिंसा' भावना के क्षेत्र पर गहन चिन्तन किया गया है। इसका क्षेत्र लौकिक और पारलौकिक दोनों है। इसका व्यापार बाहर और अन्दर दोनों होता है। बाह्य में तो किसी भी छोटे या बड़े जीव को मन–वचन–काय किसी भी प्रकार की हीन या अधिक पीड़ा न पहुँचाना तथा उसका दिल न दुःखाना बाह्य अहिंसा है जो बाहर में दृष्टिगत होती है। यह स्थूल अहिंसा है, परन्तु दूसरी ओर जो अन्तरंग में राग–द्वेष से रहित होकर साम्यभाव में स्थित है, वह आन्तरिक अहिंसा है। इस प्रकार जैन धर्म अहिंसा भावना का क्षेत्र तीनों लोकों में मानता है।

आचार की दृष्टि से पात्र की पात्रतानुसार अहिंसा को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है –– 1. अहिंसाणुव्रत और 2. अहिंसामहाव्रत।14

अहिंसाणुव्रत की भावनाएँ :

अहिंसाणुव्रत की स्थिरता के लिए भावना का होना परमावश्यक है। यहाँ पर भावना का अर्थ है –– बार–बार चिन्तन करना। अब प्रश्न उठता है कि किस भावना का बार–बार चिन्तन किया जाय, जिससे अहिंसाणुव्रत स्थिरता को धारणा कर सके।

जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'सर्वार्थसिद्धि' में अहिंसाणुव्रत की पाँच भावनाओं का उल्लेख किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं15 ––

हिंसक निरन्तर अद्वेजनीय है, वह सदा वैर को बांधे रहता है। इस लोक में वध, बन्ध और क्लेश आदि को प्राप्त होता है। परलोक में भी अशुभ गति को प्राप्त होता है। यह गर्हित भी होता है अतः हिंसा का त्याग श्रेयस्कर है। इस प्रकार इनके बार–बार चिन्तन करने से हिंसा का त्याग होता है जिससे अहिंसाणुव्रत की भावना से स्थिरता बनी रहती है।

अहिंसा महाव्रत की भावनाएँ –जैन दर्शन में अहिंसा महाव्रत की स्थिरता के लिए उसकी भावनाओं पर सूक्ष्म रूप से चिंतन किया गया है, जिसके आधार पर अहिंसा महाव्रत की भावनाएँ निरूपित की गई हैं जो इस प्रकार उल्लेखनीय है ––

जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'तत्त्वार्थसूत्र' में अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाओं का उल्लेख किया जो इस प्रकार है16 ––

वचनगुप्ति : वचन की प्रवृत्ति को सम्यक् प्रकार से रोकना, वचनगुप्ति है।

मनोगुप्ति : मन की प्रवृत्ति को सम्यक् प्रकार से रोकना, मनोगुप्ति।

ईयासमिति : आगे की चार हाथ जमीन देखकर यत्नपूर्वक चलाना, ईर्यासमिति है।

आदान–निक्षेपण समिति : भूमि पर यत्नाचारपूर्वक सावधानी से किसी वस्तु को उठाना और रखना, आदान–निक्षेपण समिति है।

आलोकित–भोजन पान : देखकर या शोधकर आहार, पानी आदि ग्रहण करना, आलोकित भोजन–पान है।

उपरोक्त पाँच प्रकार की भावनाओं का बार–बार चिन्तन करने से अहिंसा महाव्रत सुदृढ़ होता है।

इस प्रकार जैन धर्म या संस्कृति में अहिंसा–भावना का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह समस्त जीवों का परिपालन करनेवाली, आनन्द की संतति, उत्तम गति प्राप्त करनेवाली शाश्वत लक्ष्मी है, जो जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कराने में पूर्ण सामर्थ्यवान है।

संदर्भानुक्रम :

1 अहिंसादर्शन, ले0 उपाध्याय अमरमुनि, प्रका0 – सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा–2, उ0 प्र0 1976.

2.दशवैकालिकचूर्णि, अ0 01, प्रका0 – आगमोदय समिति, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1985.

3.वही

4.तत्र अहिंसा व्रतमादी क्रियते प्रधानत्वात्।
सत्यादीनि हि तत्परिपालनार्थदीनि सस्यस्य वृत्ति परिक्षेपवद्।। सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, 7/1/343/4, प्रका0 – भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, प्रथम संस्करण, सन् 1955.

5.भगवती अराधना, आचार्य शिवकोटि, गा. 784–790/प्रका0 – जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर, प्रथम संस्करण, ई0 सन् 1935.

6.आचारांगसूत्र, 1/2/3, अनुवादक – पं0 मुनि श्री सौभाग्यमल जी महाराज, सम्पादक – पं0 वसन्तीलाल नलवाया। प्रका0 – जैन साहित्य समिति, नयपुरा, उज्जैन, प्रथमावृत्ति वि0 सं0 2007.

7.दशवैकालिकसूत्र 6/11/हरिभद्रीय वृत्ति, प्रकाशक – मन सुखलाल महावीर प्रिटिंग वर्क्स, बम्बई।

8.वृहत्कल्पभाष्य, 4584/प्रका0 – सन्मति ज्ञानपीठ लोहामंडी, आगरा, उ0 प्र0

9.दशवैकालिकसूत्र, 1/1, प्रकाशक – जैन साहित्य समिति, नयपुरा उज्जैन, आवृत्ति, वि0 सं0 2007.

10.वही

11.उत्तराध्ययनसूत्र, 8/10, सम्पादक – साध्वी चन्दना, प्रका0 – वीरावतन प्रकाशन, जैन भवन, लोहामंडी, आगरा, सन् 1972.

12.सूत्रकृतांगसूत्र, 1/1/1/3, शीलांककृत टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित, प्रका0 – जवाहिरलाल महाराज, राजकोट। प्रथम संस्करण, वि0 सं0 1993.

13.अहिंसा–दर्शन, उपाध्याय अमरमुनि, पृ0 सं0 11.

14.दर्शवैकालिकसूत्र, 10/15/प्रकाशक जैन साहित्य समिति, नयपुरा उज्जैन, प्रथमावृत्ति, वि0 सं0 2007.

15.सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, 7/9/347/3, प्रका0 – भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई0 सन् 1955.